विषय	हिन्दी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	P 15 : साहित्य का इतिहास दर्शन
इकाई सं. एवं शीर्षक	M 35 : सुमन राजे की साहित्येतिहास -दृष्टि
इकाई टैग	HND_P15_M35
प्रधान निरीक्षक	प्रो. रामबक्ष जाट
प्रश्नपत्र-संयोजक	प्रो. मैनेजर पाण्डेय
इकाई-लेखक	प्रो. देवेन्द्र चौबे
प्रश्नपत्र समीक्षक	प्रो. गोपेश्वर सिंह
भाषा सम्पादक	प्रो. देवशंकर नवीन

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. इतिहास चिन्तन और सुमन राजे
4. काल विभाजन और सुमन राजे
5. साहित्येतिहास का आदिकाल हिन्दी को रिक्थ (विरासत)
6. नवजागरण की अवधारणा और सुमन राजे
7. हिन्दी साहित्य का मध्ययुगीन नवजागरण
8. आधुनिक नवजागरण और हिन्दी
9. हिन्दी साहित्य की स्त्री दृष्टि
10. हिन्दीतर कवयित्रियाँ और हिन्दी साहित्य का इतिहास
11. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप

- साहित्य का इतिहास दर्शन परम्परा में स्त्री दृष्टि से परिचित हो सकेंगे।
- सुमन राजे की इतिहास दृष्टि से परिचित हो सकेंगे।
- सुमन राजे की इतिहास दृष्टि के विकास और उसकी वैचारिकी को जान पाएँगे।
- सुमन राजे की साहित्येतिहास के लिए चयनित प्रतिमानों को समझ पाएँगे।

2. प्रस्तावना

विगत कुछ वर्षों से स्त्री अपनी पहचान, अपनी अस्मिता की खोज में प्रयासरत है। एक तरफ वह वर्तमान में अपनी समस्याओं के साथ खड़ी, समाज से संघर्ष कर रही है, दूसरी तरफ स्वयं की तलाश जब इतिहास में अपने अस्तित्व की लघुता देख रही है। गरज यह नहीं है कि इतिहास में स्त्री का अस्तित्व लघु था, बल्कि इतिहास चिन्तन की परम्परा में उसकी उपस्थिति एक बिन्दु के समान है। इसका कारण यह था कि अब तक सिर्फ पुरूष इतिहासकारों ने ही अपने मनुवादी विचारों के कारण स्त्री को गौण मानते हुए इतिहास का निर्माण किया है। पिछले कुछ दशकों में इतिहास-लेखन एवं इतिहास-दर्शन का काफ़ी विकास हुआ है। यह नया इतिहास दर्शन मानता है कि समाज के विकास में स्त्री-पुरुष, अभिजन एवं निम्न सभी वर्गों का समान योगदान रहा है। सुमन राजे ने इस नई इतिहास-दृष्टि के साथ पूर्व के हिन्दी साहित्येतिहास में अनुपस्थित स्त्री साहित्य की विकास रेखा को चिह्नित करने का प्रयास किया है। सुमन राजे ने इतिहास सम्बन्धित चार पुस्तकें लिखी हैं– *साहित्येतिहास : संरचना और स्वरूप*, (1975), *साहित्येतिहास आदिकाल*, (1976), *हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास*, (2003), *इतिहास में स्त्री*, (2012) (आखिरी पुस्तक मृत्युपरान्त प्रकाशित)

3. इतिहास चिन्तन और सुमन राजे

कुछ विद्वानों का मानना है कि भारतीयों में 'ऐतिहासिक विवेक' का अभाव है। नलिन विलोचन शर्मा के अनुसार– "प्राच्य-विद्या-विशारद पाश्चात्यों के अनुसार प्राचीन भारतीयों ने अपने अतीत का इतिहास प्रस्तुत नहीं किया, उनमें ऐतिहासिक विवेक था ही नहीं। हम जब आज के इतिहास-ग्रन्थ देखते हैं तो हमारे मन में भी क्या कुछ ऐसा सन्देह उत्पन्न नहीं होता?" सुमन राजे इसे और स्पष्ट करती हैं उनके अनुसार 'भारतीय ऐतिहासिक बुद्धि एवं ऐतिहासिक विधा पर पाश्चात्य इतिहासकारों द्वारा लगाए गए आरोप मूलतः दो प्रकार के हैं– सामग्री का अभाव और ऐतिहासिक दृष्टि का अभाव।'

उनकी राय में इतिहास की भारतीय अवधारणा आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों द्वारा नियन्त्रित होती रही है। तथ्य संकलन मात्र पर बहुत कम ध्यान दिया गया है, मुख्य ध्यान ऐतिहासिक घटनाओं के व्यापक प्रभाव की ओर है। ऐतिहासिक चरित्र, पौराणिक एवं अतिमानवीय व्यक्तित्वों में रूपान्तरित हो गए हैं, इसलिए ऐतिहासिक घटनाएँ वर्णात्मक एवं आख्यानात्मक हो गई हैं। नलिन विलोचन शर्मा की मान्यता है कि स्मृति ग्रन्थों, काव्यों महाकाव्यों में भरे पड़े इतिहास के विवरण की उपेक्षा कर प्रामाणिक साहित्येतिहास नहीं लिखा जा सकता।आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ. रामविलास शर्मा ने भी अपने इतिहास लेखन में पारम्परिक दर्शन से जुड़ी सामग्रियों का उपयोग किया है, परन्तु पुराणपन्थी एवं रीतिवादी दृष्टि का विरोध किया है तथा उस प्रकार की सामग्रियों को एवं दृष्टियों को इतिहास एवं जन विरोधी माना है। आलोचक मैनेजर पाण्डेय ने भी साहित्य और इतिहास दृष्टि में इस बात पर जोर दिया है कि 'साहित्य के इतिहास लेखन में साहित्य के परिवर्तन और विकास की व्याख्या होती है, उसमें परम्परा और परिवर्तन के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध का बोध होता है (पृ. viii, भूमिका)।'

4. काल विभाजन और सुमन राजे

काल विभाजन में प्रायः काल को विच्छिन्न करके देखने का प्रयास किया गया है। प्रवृत्ति के नाम से उस काल का नामकरण वीरगाथा काल, भक्ति काल आदि कर दिया गया। क्या पूर्ववर्ती एवं परवर्ती काल में वैसी प्रवृत्ति नहीं मिलती? सुमन राजे काल विभाजन की इस समस्या के समाधान का संकेत देती हैं कि 'ऐतिहासिक प्रक्रम को किसी मूल्य या आदर्श से जोड़ा जाए। ऐसा करने पर ही ऊपरी और पर अर्थहीन लगने वाले घटनाक्रम को उसके सारभूत और निःसार तत्त्वों में तोड़ा जा सकेगा। केवल उसी स्थिति में हम ऐतिहासिक क्रम विकास की बात कर सकेंगे जिसमें किसी एक घटना की वैयक्तिक विशिष्टता अक्षुण रहती है किसी विशिष्ट वास्तविकता का किसी सामान्य मूल्य से सम्बन्ध दिखाकर हम किसी विशिष्ट को सामान्य अवधारणा का एक निरा नमूना बनाकर नहीं छोड़ सकते अपितु इससे विशिष्ट को महत्त्व प्रदान करते हैं।' उन्होंने इस बात पर बल दिया है कि 'ऐतिहासिक प्रक्रिया की परख मूल्य से की जाती है, जबकि मूल्यों का मानदण्ड स्वयं इतिहास से ग्रहण किया जाता है।'

प्रसिद्ध फ़्रांसिसी इतिहास चिन्तक मार्क ब्लाक के अनुसार 'ऐतिहासिक कालखण्ड एक अखण्ड प्रवाह है, जिसे भिन्न-भिन्न खण्डों में व्यवस्थित एवं विभाजित कर बोधगम्य बनाया जाता है। ऐतिहासिक समय एक जीवन्त यथार्थ है।हम जानते हैं कि इतिहास घटनाओं का लेखा जोखा रखता है। अतः इतिहास की तरह साहित्येतिहास में भी काल-विभाजन का महत्त्व है; साहित्य की विकास-प्रक्रिया के विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिए काल-विभाजन एक आधारभूत तत्त्व है। कलिंगवुड के अनुसार इतिहास में युग व्यवस्थापन का प्रयास उन्नत तथा परिपक्व ऐतिहासिक चिन्तन का संकेत होता है। ई. एच. कार का मत है कि इतिहास का काल विभाजन तथ्य ही नहीं विशिष्ट धारणा से होता है जो दृष्टि देती है और अपनी प्रामाणिकता के लिए स्वतन्त्र होती है।

ग्रियर्सन से लेकर अब तक चली आ रही साहित्येतिहास लेखन की परम्परा में तय करना कठिन है कि काल विभाजन का कौन-सा आधार सर्वाधिक उचित है? रेने वेलेक के मतानुसार कृति जब युग धारणा का आधार बने तो नामकरण का आधार भी हो सकती है परन्तु आधार साहित्येतिहास में ही खोजा जाना चाहिए। जबकि नलिन विलोचन शर्मा का मत है कि युग विभाजन की प्रक्रिया साहित्येत्तर क्षेत्रों का परिणाम होती है। उधर गणपति चन्द्र गुप्त कहते हैं कि साहित्य की अन्तर्निहित चेतना, क्रमिक विकास उसकी परम्पराओं के उत्थान-पतन एवं विभिन्न प्रवृत्तियों के दिशा-परिवर्तन आदि के कालक्रम को स्पष्ट करना ही काल विभाजन का लक्ष्य होता है। अर्थात् काल विभाजन के दो आधार हुए– साहित्य और साहित्येत्तर क्षेत्र।

हालाँकि दोनों ही आधार एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं; क्योंकि साहित्येतर क्षेत्र के प्रभाव से साहित्य में भी परिवर्तन आता है। सन् 1857 की महान-क्रान्ति के बाद साहित्यिक कृतियों के स्वरूप में परिवर्तन आए थे तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी विरोधी चेतना से सम्पन्न साहित्य को महत्त्व मिला।
आचार्य शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के काल विभाजन के आधार को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि जिस काल-खण्ड के भीतर किसी विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता दिखाई पड़ती है, वह एक अगल काल खण्ड माना गया है और उसका नामकरण उन्हीं रचनाओं के स्वरूप के आधार पर किया गया है। वे आगे लिखते हैं कि एक ही काल और एक ही कोटि की रचना के भीतर जहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की परम्पराएँ चली हुई पाई गई हैं, वहाँ अलग-अलग शाखाएँ करके सामग्री का विभाग किया गया है।... इन धाराओं और शाखाओं की प्रतिष्ठा यों ही मनमाने ढंग से नहीं की गई है। उनकी एक दूसरे से अलग करने वाली विशेषताएँ अच्छी तरह दिखाई भी गई हैं।

स्पष्टतः शुक्लजी के काल विभाजन का आधार दोहरा है–काल सापेक्ष और प्रवृत्ति सापेक्ष। पहले के आधार पर कालविभाग और दूसरे के आधार पर नामकरण ।

सुमन राजे ने भी हिन्दी साहित्येतिहास के काल विभाजन के लिए दोहरे आधार अपनाए हैं- युग सापेक्ष और नवजागरण सापेक्ष। युग सापेक्षता से काल विभाग और नवजागरण सापेक्षता काल का नामकरण। साहित्येतिहास मध्ययुगीन नवजागरण और आधुनिक युगीन नवजागरण में वर्गीकृत करती हुई सुमन राजे का मानना है कि मूल्यों से संयुक्त करने की प्रक्रिया में हम दो नवजागरण के उन्नत शिखरों का स्पर्श करते हैं जिनके दोनों ओर विकास की सहज प्रक्रिया है। स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य का उद्भव शब्द प्राचीन अथवा आदिकाल से जुड़ा होता है। ऐसे में आदिकाल इस मध्ययुग में समाहित है।

5. साहित्येतिहास का आदिकाल : हिन्दी को रिक्थ(विरासत)

इतिहास लेखन में उद्भव एवं प्रारम्भ का प्रश्न हमेशा ही उलझनों से भरा होता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के साथ भी ऐसा ही है। प्रारम्भ का प्रश्न इतिहास के आदिकाल से जुड़ा होता है। आखिर प्रारम्भ कहाँ से माना जाए? अर्थात् सदैव यह डर बना रहेगा कि हर नव अनुसन्धित साक्ष्य पूर्व के स्थापित साक्ष्य को पद्च्युत कर देगा। हर कृति की कोई पूर्ववर्ती कृति होगी, फिर कोई उसकी भी पूर्ववर्ती और, तब 'प्रारम्भ' पल-पल आविष्कृत होने की प्रक्रिया में स्थगित होता रहेगा। सांख्य दर्शन के 'सत्कार्यवाद' का दार्शनिक सिद्धान्त मानता है कि प्रकृति परिणामवाद है। सृष्टि के सारे तत्त्व प्रलयावस्था में बीज रूप से या अव्यक्त रूप से प्रकृति के अन्तर्गत विद्यमान रहते हैं तथा सर्गावस्था में कार्य रूप से व्यक्त होते हैं। अर्थात् हर प्रभाव का कारण पहले से ही उपस्थित होता है, चाहे वह एक सम्भावना के रूप में ही हो। ऐसे में कोई भी प्रभाव एकदम नया हो ही नहीं सकता। दूसरी ओर न्याय-वैशेषिक के 'असत्कार्यवाद' का दार्शनिक सिद्धान्त मानता है कि कार्य, कारण की नवीन सृष्टि है। दोनों ही सिद्धान्तों में दो विपरीत ध्रुवों पर रेखांकित उद्भव एवं प्रारम्भ की समझदारी चुनौतीपूर्ण है।

इतिहास में प्रारम्भ की अवधारणा एक विकासात्मक प्रतिदर्श के अनुसार ही तय होती आई है। साहित्यिक परम्पराएँ एक विकास क्रम में दिखती हैं। हर साहित्यिक कृति के पीछे इतिहास की एक लम्बी परम्परा होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस विकासात्मक प्रतिदर्श का समर्थन करते हैं। सूर के पदों के सन्दर्भ में उनकी यह मान्यता है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्य रचना होने पर भी ये इतने सुडौल और परिमार्जित हैं, सूरसागर किसी चली आती हुई गीत काव्य परम्परा का, चाहे वह मौखिक ही रही हो, पूर्ण विकास-सा प्रतीत होता है।

इसी विकासात्मक इतिहास के प्रतिदर्श को अपनाने के कारण भाषाओं के विकास को भी समझने का प्रयास किया जाता है। एक लम्बे शोध के बाद ऐतिहासिक भाषा वैज्ञानिक आधुनिक आर्य-भाषाओं को संस्कृत की पुत्रियाँ बताते हैं। इनके अनुसार एक आदि भाषा होती है, जिससे किसी भाषा परिवार की सारी भाषाएँ उत्पन्न होती हैं। हिन्दी भाषा अपभ्रंश से उत्पन्न हुई, अपभ्रंश प्राकृत से और प्राकृत संस्कृत से उत्पन्न हुई है।

इस विकासात्मक इतिहास में प्रारम्भ या उद्भव के स्थान पर प्रभाव की बात करें तो समस्या से बचा जा सकता है। सुमन राजे इस समस्या से बचकर आरम्भ के स्थान पर विरासत की बात करती हैं। वे लिखती हैं कि 'संस्कृत साहित्य का जितना अधिक प्रभाव नव्य भारतीय आर्य भाषाओं के साहित्य पर पड़ा है, उतना अन्य किसी का नहीं। हिन्दी साहित्य की मूल भावधारा को पोषित करने वाली स्रोत-धारा संस्कृत है एवं अभिव्यंजना को पुष्ट करने वाली अपभ्रंश। पालि, प्राकृत साहित्य का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से ही पडा है, अन्य विद्वानों ने भी हिन्दी साहित्य पर संस्कृत एवं अपभ्रंश साहित्य का प्रभाव देखने का प्रयास किया है। भगीरथ मिश्र के अनुसार 'रीति काव्य लिखने की परम्परा हिन्दी को संस्कृत साहित्य से ही प्राप्त हुई है।' मालती सिंह के अनुसार 'हिन्दी साहित्य का विकास संस्कृत साहित्य के विकासक्रम में आता है, अतएव संस्कृत साहित्य की परम्पराओं और प्रवृत्तियों से उसको अलग करके नहीं देखा जा सकता है।'

सुमन राजे ने एक ओर जहाँ 'साहित्येतिहास आदिकाल' में हिन्दी के विभिन्न काव्य रूपों का सम्बन्ध संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश से दिखाया है और हिन्दी साहित्य को प्राप्त रिक्थ (विरासत) की चर्चा की है वहीं दूसरी ओर *हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास* में 'महिला लेखन की अविच्छिन्न धारा' की तलाश में संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश की कवयित्रियों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है। महिला लेखन की उस अविच्छिन्न धारा खोज निकलने की है और उसे एक आकार देने की आवश्यकता को सुमन राजे ने रेखांकित किया है।

6. नवजागरण की अवधारणा और सुमन राजे

सुमन राजे साहित्य लेखन को प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ नवजागरण के रूप में उसे क्रमबद्ध करती हैं। 'हिन्दी साहित्य का आधा *इतिहास* में यही क्रम चलता है। उनके अनुसार; "नवजागरण मूल्यतः मानव की वह प्रतिगामी चेतना है, जो काल के अन्तराल से विस्फोट करती है और जिसके परिणामस्वरूप इतिहास के एक युग से दूसरे युग में छलाँग परिलक्षित होती है।" सुमन राजे ने प्रथम भारतीय नवजागरण का काल ई.पू. 800 से ई.पू. 600 तक माना, क्योंकि उस समय तक वैदिक धर्म कर्मकाण्ड की सीमा तक पहुँचकर समाज की चुनौती को स्वीकार करने में असमर्थ हो चुका था। वह युग कर्म से भावना की ओर विकास इंगित करता था। वैदिकोत्तर युग में अनेक सुधारवादी दर्शनों और सम्प्रदायों का उदय हुआ। यह उदय विशेष रूप से मगध और विदेह के अर्ध-ब्राह्मण क्षेत्रों में हुआ। बौद्ध एवं जैन दर्शन का उदय हुआ। दर्शन का केन्द्र बदलने से साहित्य का केन्द्र भी परिवर्तित हो गया। थेरीगाथाएँ इस साहित्य के केन्द्र परिवर्तन का परिणाम है।

द्वितीय भारतीय नवजागरण का काल की तिथि निर्धारित किए बगैर उनका मानना है कि ईसवी सदी के प्रारम्भ से कुछ पहले ही भारतीय धर्मों में कुछ गम्भीर परिवर्तन प्रारम्भ हो गए थे। सभी प्रमुख धर्मों पर भक्ति का प्रभाव होने लगा था। गुप्त काल (ईसा की चौथी-पाँचवीं शताब्दी) तथा उसके बाद की तीन शताब्दियों में भारतीय जनता की संरचना में तेजी से परिवर्तन आया। विभिन्न जातियों के सम्मिश्रण से बौद्धिक स्वाधीनता में अभिवृद्धि हुई और एक उदार तथा सहिष्णु दृष्टिकोण, व्यक्तिगत देवता के प्रति गम्भीर भक्ति भावना तथा समस्त प्राणियों के प्रति करुणा का विकास हुआ। इस युग में संस्कृत को राष्ट्र भाषा का स्थान मिला। स्त्री लेखिकाओं ने प्राकृत एवं संस्कृत को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

मध्ययुग की भक्ति के आश्रय लिए तृतीय भारतीय नवजागरण एक लोक जागरण है। इस नवजागरण का सर्वमान्य मूल्य 'भक्ति और प्रेम' है।

चतुर्थ नवजागरण का सर्वमान्य मूल्य 'आधुनिकता' है। इसका आरम्भ सन् 1857 की क्रान्ति के बाद माना गया। स्पष्ट है कि सुमन राजे ने साहित्य के इतिहास को युगसापेक्ष और नवजागरण सापेक्ष विभाजित किया है।

7. हिन्दी साहित्य का मध्ययुगीन नवजागरण

हिन्दी साहित्य के आदिकाल को सुमन राजे 'मध्ययुगीन नवजागरण' के रूप में चिह्नित करती हैं और इसमें सन् 769 से 1450 तक की रचनाओं का जिक्र करती हैं। उनका मानना है कि 'हिन्दी साहित्येतिहास को मूल्यों से संयुक्त करने की प्रक्रिया में हम दो नवजागरणों के उन्नत शिखरों का स्पर्श करते हैं जिनके दोनों ओर विकास की सहज प्रक्रिया अंकित है।' मध्ययुगीन नवजागरण और आधुनिक नवजागरण। मध्ययुग के काल का निर्धारण वे सन् 647-1857 ई. तक मानती हैं। मध्ययुगीन नवजागरण को निम्नलिखित उपभागों में बाँटती हैं–

संक्रमण काल : इस काल में प्राचीन साहित्य मध्ययुग में संक्रमण करता है

संयोजन काल : इस काल में साहित्य में नवीन तत्त्वों का संयोजन हो जाता है

सम्प्रेषण काल : इस काल में मात्रात्मक परिवर्तन और तीव्र हो जाते हैं, जिनकी प्रकृति विधायक है और नवजागरण की शक्ति, भक्ति यहाँ आकर उभरती है।

संश्लेषण काल : यह गुणात्मक परिवर्तन का काल है। यहाँ वस्तु और रूप– दोनों में वृद्धि लक्षित होती है, साहित्य के विकास में एक छलाँग है।

अवरोध काल : इस काल तक आते-आते नवजागरण की मूल चेतना अवरुद्ध दिखाई देने लगती है। उसके विघटनशील तत्त्व क्रियाशील होने लगते हैं। साहित्य का विकास अपनी ही बनाई परम्पराओं में उलझने लगता है, प्रत्येक काव्यधारा में स्थिरत्व एवं अवरोध लक्षित है।

उन्होंने इस मध्ययुग में हिन्दी साहित्य के इतिहास के आदिकाल, पूर्व मध्यकाल, उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) तीनों को एक में समेट लिया है। हिन्दी साहित्य में जिसे आदिकाल कहा जाता है, वह सुमन राजे का मध्ययुगीन संक्रमण काल, संयोजन काल एवं सम्प्रेषण काल, है। भक्तिकाल (पूर्व मध्यकाल) संश्लेषण काल है तथा रीतिकाल (उत्तर मध्यकाल) स्थिरत्व एवं अवरोध काल है।

8. आधुनिक नवजागरण और हिन्दी

बीसवीं सदी के आरम्भिक काल को सुधारवादी जीवन दर्शन का काल कहा जाता है। क्योंकि इस युग में आधुनिक नवजागरण से उद्‌भूत नवीन मूल्यों– मानव-प्रेम, राष्ट्र-प्रेम तथा समाज सुधार जैसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रमुखता दी गई। सुमन राजे के अनुसार 'इस युग का नवजागरण राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण है, 'आधुनिकता' जिसका सर्वमान्य मूल्य है।' इस आधुनिक नवजागरण में एक तरफ मानुस मुक्ति की पहचान हुई तो दूसरी तरफ मुक्ति का स्वर समाज और साहित्य में अभिव्यक्त हुआ। आधुनिक नवजागरण ने अपनी सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती दी। एक तरफ उस नवजागरण में पुरुषों ने स्त्रियों के उत्थान के बारे में सोचा वहीं दूसरी तरफ स्त्रियों ने स्वयं के उत्थान के लिए स्त्री आन्दोलन शुरू किया। इस नवजागरण में स्त्री शिक्षा पर बल दिया गया। कलकत्ता तथा कुछ अन्य शहर स्त्री शिक्षा के केन्द्र बनकर उभरे। 'स्त्री शिक्षा का कार्य सन् 1820 के आसपास बंगाल और बम्बई में ईसाई मिशनरियों की पत्नियों ने शुरू किया।' हालाँकि इसका उद्देश्य कुछ और ही था। इस शिक्षा के प्रभाव से नारी का योगदान राजनीतिक, सामाजिक एवं साहित्य के क्षेत्रों में दिखाई देने लगा। यही कारण है कि आधुनिक युगीन नवजागरण में स्त्री लेखन का उभार आया।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध का नवजागरण आन्दोलन भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण परिघटना है। इस आन्दोलन ने भारत की मुक्ति की इबारत लिखी। यह सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन होने के साथ-साथ राजनीतिक आन्दोलन का स्वरूप भी लिए हुए था। इस कारण यह एक वृहत्तर आन्दोलन साबित हुआ। इसमें जीवन के हर क्षेत्र परिवर्तन की पुकार थी। इस आन्दोलन में एक और महत्त्वपूर्ण बात स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी हुई। चाहे वह 1857 का स्वतन्त्रता संग्राम हो या आगे चलकर गाँधी जी के नेतृत्व में लड़ा गया स्वाधीनता आन्दोलन, सभी में अपनी सक्रिय उपस्थिति दिखाकर स्त्रियों ने भारतीय नीति-नियन्ताओं का ध्यान अपनी ओर खींचा और यह सन्देश दिया कि वह भी अपनी नियति को बदल सकती हैं।

आधुनिकयुगीन नवजागरण के उदय के कारणों की पड़ताल करते हुए सुमन राजे इस निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि यह आन्दोलन एक द्विमुखी संघात का परिणाम रहा है। अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों के विरोध में किसानों, मजदूरों और बुद्धिजीवी वर्ग का सशक्त विरोध इस आन्दोलन का निमित्त बना। सुमन राजे लिखती हैं, "अंग्रेजी शासन की नीतियों ने भारतीय उद्योग धन्धों को उजाड़ दिया। फलस्वरूप किसान और दस्तकार जातियाँ अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए

लामबन्द होने लगीं।" सन् 1768 में त्रिपुरा के शमशेर गाजी का विद्रोह, सन् 1788-90 में पश्चिम बंगाल में ढाँकुड़ा जिले के आदिवासी किसानों का विद्रोह, सन् 1854-56 में सन्थालों का विद्रोह आदि अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों के विरुद्ध किसानों के आन्दोलन की एक बानगी है। इसी कालखण्ड में सम्पूर्ण भारत में किसानों के और भी बहुत से आन्दोलन हुए। आधुनिकयुगीन नवजागरण आन्दोलन का एक दूसरा आयाम बुद्धिजीवियों के आन्दोलन थे, जिन्होंने भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में आमूल-चूल परिवर्तन का आह्वान किया। इनमें मुख्य रूप से बंगाल के राजा राम मोहनराय के ब्रह्म समाज, दयानन्द सरस्वती के आर्यसमाज, गोविन्द रानाडे के प्रार्थना समाज, और रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इन सब के द्वारा छेड़े गए आन्दोलन से भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक पुनरुद्धार का माहौल बना। जनता में जागृति के भाव का संचार हुआ। राष्ट्रीय चेतना से भर कर अपनी नियति को बदलने को वे तत्पर हुईं। स्त्रियों की दशा को बदलना भी इस आन्दोलन का एक मुख्य लक्ष्य रहा। सुमन राजे रेखांकित करती हैं कि इन सभी आन्दोलनों ने 'स्त्री-विमर्श' को मुख्य मुद्दा बनाया। सती प्रथा निषेध हो, या विधवा-विवाह प्रारभ, सभी ने स्त्री-गरिमा और स्वतन्त्रता की बात की। परिणामस्वरूप स्त्री ने स्वयं अपने और अपने परिदृश्य के बारे में सोचना शुरू किया।"

इस आधुनिक युगीन नवजागरण से भारतीय जीवन के हर क्षेत्र परिवर्तन की ललक, रूढिवाद से मुक्त होने की उत्कट आकांक्षा और नई चेतना का स्पन्दन दिखाई पड़ा।... साम्राज्यवाद एवं सामन्तवाद के विरुद्ध चेतना प्रखर होती गई।" साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा।

सुमनराजे आधुनिकयुगीन नवजागरण के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्त्रियों की चर्चा लगभग न के बराबर देखती हैं। कुछ विशिष्ट काल-खण्ड और कुछ विशिष्ट कवि चुन लिए गए हैं पूरा इतिहास उन्हीं के इर्द-गिर्द घूमता है। जो इस केन्द्र के बाहर रह गए वे सदा के लिए ही विस्मृत कर दिए गए। उनके अनुसार परम्परागत साहित्येतिहास में विशेष 'प्रकाशबिन्दु' खोजकर उनके प्रभामण्डल के रूप में साहित्यकारों को स्थापित करने की प्रथा रही है। परिणामस्वरूप बहुत कुछ 'फोकस' के बाहर रह गया। खासतौर पर महिला-लेखन तो पूरा-का-पूरा 'फोकस' के बाहर ही रहा।

9. हिन्दी साहित्येतिहास की स्त्री दृष्टि

सुमन राजे ने सन् 2000 से पूर्व जो दो इतिहास पुस्तकें लिखीं उसमें उनकी इतिहास-दृष्टि में स्त्री चेतना या स्त्री इतिहास लेखन का सन्दर्भ नहीं दिखता है। वे साहित्य के इतिहास में लोक साहित्य को रखने की बात तो करती हैं पर महिला लेखन के लोक साहित्य को स्थान देने की बात नहीं करतीं हैं। आखिर किस कारण उनका ध्यान इस तथ्य की ओर नहीं गया? यह त्रुटि अनजान मनसूबा (Unidentified Intention) के कारण हुई है। शुक्लजी तथा अन्य साहित्येतिहासकारों द्वारा स्त्रियों के लेखन को छोड़ना भी अनजान मनसूबा है, जिसकी शिकार आरम्भ में स्वयं सुमन राजे भी होती हैं। इस समय तक जो भी इतिहास लेखन हो रहा था उसमें स्त्री का छुटना, कोई मनसूबा (Intention) नहीं था; बल्कि सामाजिक विचारधारा में स्त्री अस्मिता की बात ही न उठी थी। अस्मितावादी बहस निम्नवर्गीय प्रसंग को जानने के क्रम में उठा। रणजीत गुहा ने सन् 1982 से 1997 तक 'सबाल्टर्न स्टडीज' शीर्षक के अन्तर्गत नौ जिल्दें प्रकाशित करवाईं। रणजीत गुहा, पार्थ चटर्जी, ज्ञानेन्द्र पाण्डे, शाहिद अमीन, दीपेश चक्रवर्ती, गायत्री चक्रवर्ती आदि ने सबाल्टर्न स्टडीज के माध्यम से निम्नवर्ग के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक योगदान के साथ उनकी अस्मिता के लिए बहस छेड़ी। इसी दौरान

इक्कीसवीं सदी के शुरुआत में भारत ने वर्ष 2001 को स्त्री सशक्तिकरण का वर्ष घोषित किया है। कई पत्र-पत्रिका विशेषांक भी निकाले हैं। सबका ध्यान उस मुद्दे की ओर आकर्षित हुआ, सुझाव आए, योजनाएँ बनीं,

सम्भवतः इसके बाद ही सुमन राजे का ध्यान स्त्री लेखन के इतिहास की ओर गया और *'हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास'* की ओर उनका रुझान हुआ। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह पुस्तक शेष रह गए आधे समुदाय (स्त्री) के लेखन का इतिहास है। सुमन राजे मानती हैं कि अबतक हिन्दी साहित्य का जो भी इतिहास लिखा गया वह अधूरा है।
आधा इतिहास के माध्यम से उन्होंने परम्परागत हिन्दी साहित्येतिहास के समानान्तर हिन्दी के स्त्री साहित्येतिहास का निर्माण किया है। उन्होंने लिखा है कि 'महिला-लेखन की एक अवच्छिन्न धारा रही है, आवश्यकता उसे खोज निकलने की है।' इसी खोज के एक प्रयास के रूप में 'आधा इतिहास' निर्मित होता है। यह महिला लेखन क्यों छूट गया है? इस प्रश्न पर जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं कि "पुरुष-सन्दर्भ से स्त्री की अस्मिता जब भी निर्मित होगी, स्त्री मातहत होगी। उसकी स्वायत्त छवि उभर कर सामने नहीं आ पाएगी। पुरुष-सन्दर्भ में स्त्री के कार्यभारों को तय करने का का एक लाभ यह होता है कि स्त्री को पुरुषवर्ग समूचा हज़म कर जाता है, पितृसत्ता हज़म कर जाती है।" इतिहास और साहित्येतिहास के सन्दर्भ में भी कुछ ऐसा ही है। सिमोन द बोउवार ने भी यह आरोप लगाया है कि "अतीत में प्रत्येक इतिहास का निर्माता पुरुष ही रहा है।" जगदीश्वर चतुर्वेदी ने भी लिखा है कि "सामाजिक इतिहास हो या साहित्य का इतिहास हो पुंसवादी नजरिए का वहाँ पर भी वर्चस्व है। इतिहास का अर्थ है पुरुषों का इतिहास। इतिहास में पुरुषों की भूमिका का महिमामण्डन ही इतिहासकारों का प्रधान लक्ष्य रहा है। इतिहास के निर्माण में स्त्री की भूमिका को महत्त्व नहीं दिया गया।" सुमन राजे ने लिखा है कि 'इतिहास लेखन अपनी प्रकृति में सामन्ती होता है।'
सामन्ती प्रकृति के इतिहास का मानना है-
"कि, केवल लिखित शब्द ही प्रामाणिक है।
कि, ऐतिहासिक विवरणों से पुख्ता कृति ही प्रामाणिक है।
कि, ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता एक ही चीज है।
कि, दरबारी-लेखन हमेशा सच बोलता है और उसका कृति से मिलान होना जरुरी है।
कि, लोक साहित्य चूँकि मौखिक होता है इस लिए उसे साहित्येतिहास से ख़ारिज किया जा सकता है।"
वे इसे और स्पष्ट करती हैं कि 'इतिहास की सामन्ती प्रकृति लेखन में कम, सामग्री चयन एवं वैचारिकी पर अधिक लागु होती है।' इस धारणा ने काल के साथ-साथ कई तथ्यों को छोड़ दिया है। इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि 'काल ने कितना छोड़ा है इससे बड़ी बात यह है कि कितना बचा रह सका है। सबसे बड़ी बात तो यही है कि अवशिष्ट में से हम कितना उपलब्ध कर पाते हैं, या करना चाहते हैं।" 'जो अंश खाली छुट गए हैं या छोड़ दिए गए हैं, उनके भराव में मिलता है महिला-लेखन। हाँ, वह भराव आधा खो गया है और आधा 'कंठ' में छूट गया है।' इसलिए आवश्यक है कि साहित्येतिहास में इस कंठ में बसे इतिहास और साहित्य को स्थान दें। सुमन राजे इस छुट गए अंश को महिला लेखन से भरने का प्रयास करती हैं और हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास निर्मित करती हैं। हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास एक नई दृष्टि- 'स्त्री दृष्टि' को आधार बना कर लिखा गया है जो साहित्य के इतिहास में प्रथम प्रयास भी है, जिसे एक सफल प्रयास भी कहा जा सकता है।

10. हिन्दीतर कवयित्रियाँ और हिन्दी साहित्य का इतिहास

हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास में हिन्दी कवयित्रियों से अधिक हिन्दीतर कवयित्रियाँ हैं। सुमन राजे ने इस इतिहास में 415 कवयित्रियों के नाम लिए गए हैं, जिसमें से हिन्दी की मात्र 194 है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आधुनिक काल की

कवयित्रियाँ एवं मीरा, ताज, चाँद, सखी और जेबुन्निसा आदि 10-12

भक्तिकालीन स्त्री कवियों के अलावा शेष लेखिकाएँ हिन्दी की नहीं, बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं- जैसे संस्कृत, पालि, प्राकृत, कन्नड़, तमिल, तेलुगू, कश्मीरी, मलयालम, उड़िया और असमिया की हैं। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते समय अखिल भारतीय महिला रचनाशीलता को क्यों शामिल करती हैं? सुमन राजे इस सन्दर्भ में लिखा है कि 'भाषाओं को पूर्वापर परम्परा में देखने की आदत और प्रत्येक भाषा के पृथक-पृथक साहित्येतिहासों ने चीजों को सही परिप्रेक्ष्य में हमें देखने नहीं दिया है। हम कालानुक्रम में प्रभाव की बात तो सोचते हैं परन्तु समकालीन-समानान्तर-अन्तःसम्बन्धो को नज़र अन्दाज कर जाते हैं।' जब एक ही कृति में अलग-अलग भाषाओं का प्रयोग हो सकता है। कालिदास के नाटकों में अगल-अगल पात्र अगल-अगल भाषा का प्रयोग करता है। जब एक ही कवि विद्यापति संस्कृत, अवहट्ट और देसी बयना (मैथिली) में लिखता है तो इसका अर्थ यह समझ जाना चाहिए कि ये भाषाएँ आपस में संचरण कर रही होती हैं। इसलिए सुमन राजे इस बात पर जोर देती हैं; "यह भाषाओं की आन्तरिक संचरणशीलता है, इसे स्वीकार किए बिना भी हम हिन्दी साहित्येतिहास के आदिकाल से महिला-लेखन की अनुपस्थिति को समझ नहीं सकेंगे।" इस तथ्य को ध्यान में रख कर ही उन्होंने अन्य भारतीय भाषाओं की कवयित्रियों के साथ-साथ संस्कृत की कवयित्रियों को भी हिन्दी साहित्येतिहास में स्थान दिया है। जो समय हिन्दी साहित्य के आदिकाल का है 'उसकाल में महिलाओं ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए संस्कृत भाषा को चुना है।' परन्तु वह यह भी स्पष्ट करती हैं कि "स्त्रियाँ संस्कृत भाषा में लिख रही थीं। इसका अर्थ यह नहीं कि वे लोक भाषाओं में कुछ नहीं लिख रही थीं।" उस काल की कवयित्रियाँ भी लोक साहित्य की रचना कर रही थीं परन्तु 'सामन्ती इतिहास लेखन लोक साहित्य को मौखिक व अप्रामाणिक मानकर उसे साहित्येतिहास से ख़ारिज कर देता है।' सुमन राजे लोकेतिहास बरक्स इतिहास पर बहस कर इस तथ्य को रेखांकित करती हैं कि 'इतिहास और लोकेतिहास में जो फांक है वह भाषा के माध्यम की वजह से ही है।' हालाँकि लोक साहित्य की महत्ता को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी स्वीकार किया है। वे लिखते हैं कि 'भारतीय हृदय का सामान्य स्वरूप पहचानने के लिए पुराने प्रचलित ग्रामगीतों की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है, केवल पण्डितों द्वारा परवर्ती काव्य परम्परा नहीं है।' द्विवेदीजी भी लोक साहित्य की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखे हैं कि 'भक्ति साहित्य की प्रवृत्तियाँ जिन सामाजिक अवस्थाओं से आरम्भ हुई उन्हें जानने का महत्त्वपूर्ण साधन लोक गीत, लोक कथाएँ लोकोक्तियाँ ही हैं।'

11. निष्कर्ष

सन् 2000 के बाद सुमन राजे की इतिहास दृष्टि के केन्द्र में स्त्री आती है। उससे पूर्व वह जो भी इतिहास लिखती हैं उसमें स्त्री को रेखांकित नहीं करती हैं। उनकी दृष्टि में यह बदलाव सबाल्टर्न दृष्टि के विकास के साथ हुआ तथा सन् 2000, जिसे स्त्री सशक्ति वर्ष के रूप में मनाया गया, में उसे मुखर होने का अवसर दिया। सुमन राजे ने अपनी स्त्री इतिहास दृष्टि के द्वारा साहित्येतिहास में छूट गई स्त्रियों रेखांकित करने का प्रयास करती हैं।